E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

पदों का चतुर्विध विभाजन

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

निरुक्तकार यास्क ने अपने निरुक्त में पद के चार प्रकार होते हैं-"तद् यानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गं निपाताश्च"। अर्थात् पद चार प्रकार के होते हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात।

इन्हीं चारों भेदों को वैयाकरणों ने भी स्वीकार किया है भले ही पद के नाम पर पाणिनि ने दो ही भेद-सुबन्त और तिङन्त माने हैं। निरुक्त के वाक्यों से मालूम पड़ता है कि ये भेद यास्क के समय काफी प्रचलित थे। नाम और आख्यात के लक्षणों में यास्क ने क्रमशः सत्त्व और भाव की चर्चा की है-

"सत्त्वप्रधानानि नामानि" और **"भावप्रधानम् आख्यातम्"**। दोनों शब्दों की उत्पत्ति समानार्थक धातुओं (अस् और भू) से हुई है, अतएव यह दिखाने की चेष्टा हुई है कि नाम और आख्यात में मौलिक अन्तर नहीं, केवल अवस्था का अन्तर है। जब तक क्रिया का क्रम चल रहा है तब तक उसे 'भाव' ही कहते हैं किन्तु पूर्ण हो जाने पर क्रिया 'सत्त्व' नाम से पुकारी जाती है। पढ़ने का काम होते समय तो हम 'पठति' कहते हैं किन्तु काम के अन्त में 'पाठ' नाम रखते हैं। पाणिनि के व्याकरण में क्रिया की दोनों ही अवस्थाओं को 'भाव' कहते हैं जिसके स्वतः दो भेद हो जाते हैं- साध्यावस्थापन्न भाव, जिसे निरुतकार 'भाव' कहते हैं तथा सिद्धावस्थापन्न भाव, जिसे निरुक्तकार 'सत्त्व' कहते हैं। साहित्य-शास्त्र में केवल अन्तिम अवस्था को ही भाव कहते हैं-**"भावः अन्तिमः विकारः"**। यास्क के अनुसार आख्यात और नाम के उदाहरण क्रमशः 'गच्छति' और 'गतिः' हैं।

सत्त्व का वास्तविक अर्थ द्रव्य है जो गुणों का आश्रय होता है, जिसमें दूसरे गुणों का प्रादुर्भाव होने पर भी तत्व का विधात न हो। दूसरे शब्दों में वस्तुमात्र के बोधक द्रव्य हैं। नाम-पदों में इसी द्रव्य का प्राधान्य रहता है। जैसे-घटः, पटः, धनम्। यद्यपि इनमें भी क्रिया रहती है, किन्तु वह आख्यात

पदों के समान अमूर्त नहीं रहती। क्रिया का गौण-भाव उसे मूर्त कर देता है। यही कारण है कि नाम-पदों में स्थित द्रव्य का प्रत्यक्ष हो सकता है। द्रव्यों के बोधक मूल शब्द प्रातिपदिक होते हैं, जिनमें सुप् विभक्तियाँ लगती हैं। ये विभक्तियाँ कृदन्त शब्दों में भी लगती हैं, जैसे- पठितव्यम्, पाठकः। इसीलिए पतञ्जलि ने कहा है कि कृत्-प्रत्ययों से अभिहित भाव (क्रिया) भी द्रव्य के ही सदृश होता है। इस उक्ति का मूल स्रोत बृहदेवता है। निष्कर्षतः, सभी शब्द तो आख्यातज ही हैं, अतः सबों को कृदन्त ही क्यों न कहा जाय? किन्तु कुछ प्रत्यक्षवृत्ति वाले (अवगतसंस्कार) पद हैं, कुछ अनवगत संस्कार वाले। इन पर पिछले प्रकार के शब्दों को ही द्रव्य कहने की परम्परा है, पहले प्रकार को (कृदन्त) द्रव्यवत् कहा गया है।

यास्क के लिए वस्तुतः ऐसे विभाजन का कोई महत्त्व नहीं, यदि 'पुरुष' द्रव्य-वाचक है तो 'पाचक' भी वैसा ही है। क्रिया की पूर्णता तथा मूर्तता ही द्रव्य-प्रधान नाम पद होने का हेतु है।

उपसर्गों और निपातों का निश्चित लक्षण न तो यास्क ही दे पाये हैं और न पाणिनि ही। दोनों ने 'प्रतिपद-पाठ' करना ही सुलभ समझा है। उपसर्ग पाणिनि के मत से २२ और यास्क के मत से २० हैं, क्योंकि पाणिनि ने निस्, निर् और दुस्, दुर् को अलग-अलग माना है। पाणिनि के मत से उपसर्ग द्योतक ही हैं, अकेले उनका कोई अर्थ नहीं। यास्क ने शाकटायन के मत का उल्लेख करके इतना अवश्य किया है कि उपसर्गों के लगने से नाम और आख्यात में अर्थ का क्या परिवर्तन होता है- इसे स्पष्ट कर दिया है।

यास्क के अनुसार गार्ग्य उपसर्गों की वाचकता के पक्षधर हैं। यद्यपि वैयाकरणों ने इनके मत को उखाड़ फेंका, किन्तु इनका पक्ष भी सर्वथा युक्तिहीन नहीं है। 'भवति' का 'प्रभवति' से या 'तिष्ठति' का 'प्रतिष्ठते' में जो भेद है वह उपसर्गों का स्वार्थ माने बिना व्याख्येय नहीं। अन्वय-व्यतिरेक से हम उपसर्ग के अर्थ तक पहुँच सकते हैं। कई उपसर्ग धातु के मूल अर्थ को बिल्कुल बदल देते हैं, जो गार्ग्य के पक्ष में प्रबल प्रमाण है।

शाकटायन, यास्क तथा सभी वैयाकरण उपसर्गों के द्योतकत्व पर बल देते हैं। उपसर्गों के लगने से धात्वर्थ में जो भी परिवर्तन होता है, वह वस्तुतः धातु में ही निहित है। 'उपास्यते कृष्णः' में

उपासना रूप अर्थ 'उप' उपसर्ग का नहीं हो सकता क्योंकि वैसी स्थिति में अकर्मक 'आस्' से कर्मवाच्य का प्रयोग नहीं होगा। अन्ततः हमें 'आस्' का ही अर्थ उपासना मानना होगा, जिससे वह सकर्मक भी हो सकेगा। यही स्थिति 'अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण' में अनु + √भू की है। धातु का ही अनुभव रूप अर्थ मानना होगा, जिससे वह सकर्मक हो सके। दूसरी बात यह है कि धातुपाठ में सोपसर्गक धातुओं का पाठ नहीं है। अतः उपसर्ग द्वारा विकृत अर्थ धातु का ही है। उपसर्ग का कार्य प्रदीप के समान धातु के अन्तर्हित अर्थ की अभिव्यक्ति है। किसी वस्तु में प्रदीप के संयोग से उसके विभिन्न गुण-धर्म (ऊँचाई, रंग इत्यादि) प्रकट होते हैं; ये गुण-धर्म उस वस्तु के ही रहते हैं, प्रदीप के नहीं।

उपसर्गों के वाचक-द्योतक पक्षों के अतिरिक्त एक पक्ष है सहकारी। जिससे धातु की शक्ति आहित होती है वही सहकारी उपसर्ग है। इन तीनों पक्षों का क्रमशः निर्देश इस कारिका में हुआ है-

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा।।

किन्तु वैयाकरण उपसर्गों के द्योतकत्व पर दृढ़ हैं, जिसमें गंगेश के समान नैयायिक का भी समर्थन प्राप्त होता है। इनका कथ्य है कि 'प्रजयति' में 'प्र' का प्रकर्ष अर्थ और 'अभ्यागच्छति' में 'अभि' का सामीप्य अर्थ जो प्रतीत होता है, वह वस्तुतः धात्वर्थ है। ये उपसर्ग तो तात्पर्य ग्राहकमात्र हैं।

निपातों के तीन भेद माने गये हैं-उपमार्थक, कर्मोपसंग्रह और पदपूरण। इन सबों के उदाहरण वेदिक-साहित्य से, विशेषतया ऋग्वेद से दिये गये हैं। इन भेदों का कोई नियमित विभाग नहीं, उपमार्थक निपात पदपूरण भी हो सकते हैं, कर्मोपसंग्रह भी अथवा किसी अन्य अर्थ में ही प्रयुक्त हो सकते हैं। उनका मुख्य अर्थ देखकर ही निर्धारण किया जाता है कि अमुक शब्द क्या है। कर्मोपसंग्रह का लक्षण बहुत कुछ अस्पष्ट है। जिसके आगमन (अर्थात् प्रयोग) से अर्थों (विचारों) की पृथकता सचमुच जानी जाय जो पृथक् स्थान या स्वतन्त्र उल्लेख के कारण साधारण गणना की तरह न हो, वही कर्मोपसंग्रह, अर्थात् अर्थों या विचारों का योग करना या एकत्रीकरण, कहलाता है। डा० सरूप का अभिमत है-'जिसके योग से विचारों का वस्तुतः पार्थक्य जानें किन्तु गणना के समान का (पार्थक्य)

नहीं (अर्थात् अलग-अलग कर देने से होनेवाला पार्थक्य), वही कर्मोपसंग्रह है'। यास्क ने कुछ चौदह निपात गिनाये हैं और प्रत्येक की पुष्टि प्रयोग द्वारा की है। पदपूरण का अर्थ है निरर्थक शब्द जो छन्द की पूर्ति के लिए आते हैं। इस स्थान पर यास्क ने गद्य को अमिताक्षर और पद्य को मिताक्षर ग्रन्थ कहा है। गद्य में यदि पदपूरण के शब्द आयें तो उन्हें वाक्यपूरण कहा जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में ये अधिकता से पाये जाते हैं। निपातों के विषय में पाणिनि के सूत्र हैं-'प्राग्रीश्वरान्निपाताः', 'चादयोऽसत्त्वे', 'प्रादयः'।

उपसर्गों के समान ही भारतीय भाषाविज्ञान में निपातों के वाचकत्व और द्योतकत्व के विषय में प्रचुर विवाद है। उपसर्गों की द्योतकता तो वैयाकरणों और नैयायिकों को भी मान्य है किन्तु निपातों के विषय में नैयायिक अपना मत बदल कर इन्हें वाचक मानते हैं। जगदीश ने शब्दशक्तिप्रकाशिका में सार्थक शब्दों के तीन भेद माने है प्रकृति, प्रत्यय तथा निपात। स्वयं यास्क भी इनकी वाचकता के पक्षधर है- **'उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति'**। पुनः विभिन्न अर्थों का निरूपण करना भी इसी का पोषक है।

किन्तु वैयाकरण इस विषय पर दृढ है कि समान कक्षा में होने के कारण उपसर्गों के समान निपात भी द्योतक मात्र है। द्रव्य का बोध न करानेवाले प्र, च इत्यादि शब्द निपात कहलाते हैं। उपसर्गों को द्योतकता के पक्ष में दी जाने वाली युक्तियाँ ही यहाँ भी दी जा सकती है। नैयायिकों का तर्क है कि अनुभूयते, अलंक्रियते, नमस्करोति इत्यादि में धात्वर्थ में जो विशेष अर्थ आता है उसकी व्याख्या वाचकत्व पक्ष में ही है, किन्तु वैयाकरण इन अर्थविशेषों को धात्वर्थ ही मानकर तत्तत् निपातों को तात्पर्य ग्राहक मानते हैं। यदि 'च' का अर्थ संग्रह है तो 'अच्छा संग्रह' के लिए हम 'शोभनश्च' कहने लगते (यदि च वाचक हो)। अतः निपानों का द्योतकत्व पक्ष श्रेष्ठ है।

नञ् (न) को भी निपात कहा गया है। इसके छह अर्थ कहे गये हूँ- तत्सादृश्य (अब्राह्मणः= ब्राह्मण सदृश दूसरा व्यक्ति), अभाव (अपापम्), तदन्यत्व (अनश्वः= अश्वभिन्नः), तदल्पता (अनुदरा कन्या= अल्प उदर वाली), अप्राशस्त्य (अपशवो वा अन्ये गोऽश्वेभ्यः) तथा विरोध (अधर्म)।